इकॉलॉजिकल टिकाऊपनः समस्या का कथन

सौमित्री दास



सौमित्री दास दी एनर्जी एण्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट (टेरी) के फेलो हैं। वे सेंटर फॉर एडवांसमेंट ऑफ दी स्टेडी स्टेट इकॉनॉमी (स्थिर अवस्था अर्थ व्यवस्था प्रोत्साहन केंद्र, CASSE) में भी शरीक हैं। यह एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जो टिकाऊ विकास के एक वैज्ञानिक नज़रिए की वकालत करता है। उनके अध्ययन के क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता और वानिकी शामिल हैं। सौमित्री दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिकी के छात्र रहे हैं, और उन्होंने भारतीय वन प्रबंधन संस्थान और वर्जिनिया टेक से स्नातक उपाधि प्राप्त की है। सौमित्री ने पिछले 100 वर्षों में उभरी वैश्विक पर्यावरणीय समस्याओं पर काफी कुछ कहा है।

सौमित्री

यह काफी अनौपचारिक सत्र होगा। सवालों का स्वागत है, बशर्ते कि वे विषय से सम्बंधित हों। मैं 'इकॉलॉजिकल टिकाऊपन' और सम्बंधित सरोकारों के बारे में अपनी बात रखने में करीब आधा घंटा से 40 मिनट लूंगा। मैं आपको पृष्ठभूमि से संक्षेप में ही परिचित कराऊंगा क्योंकि मैं समझता हूं कि आपमें से अधिकांश लोग पर्यावरण के मुद्दों में शामिल रहे हैं।

पर्यावरणीय सरोकारों की परिभाषा

मैं शुरुआत इस सवाल से करना चाहूंगा कि हम इस ग्रह के पर्यावरण को किस तरह संभालें कि हम लंबे समय तक इस पर जी सकें। अब, पर्यावरण तो एक बहुत व्यापक विषय है और खुले आसमान के नीचे हर चीज़ पर्यावरण ही है। यदि आप आईपीसीसी (जलवायु परिवर्तन पर अंतर्सरकारी समिति) की जलवायु परिवर्तन सम्बंधी 2007 की रिपोर्ट पढ़ें, तो देखेंगे कि बात पानी संकट की, भूमि बरबादी की, जैव विविधता के ह्रास की, जनसंख्या की, वायु प्रदूषण की हो रही है। अल गोर की 1980 के दशक में प्रकाशित पुस्तक 'अर्थ इन दी बेलेंस' में हमें त्रस्त करने वाले मुद्दों और समाधानों को रेखांकित किया गया है। इस तरह की पुस्तकों में चर्चा होती है कि हम अपने पानी का प्रबंधन किस तरह करें, या अनवीकरणीय ऊर्जा के स्थान पर जैव-पदार्थ ईंधन का उपयोग करें, या मिट्टी/पानी के संरक्षण की बातें होती हैं, यह बताया जाता है कि आज के दौर में ऊर्जा सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है या ऊर्जा-सुरक्षा की बातें होती हैं, और कुछ हद तक अर्थ व्यवस्था की भूमिका या नवीकरणीय शहरों की बातें होती हैं। ये कुछ विषय हैं जिनकी बातचीत पर्यावरण के व्यापक दायरे में की जाती है, जिनके बारे में हम सबको किसी न किसी रूप में सोचना होगा। पर्यावरण को देखने के कई तरीके हैं और इस बात से बहुत फर्क पड़ता है कि आप किस परिप्रेक्ष्य से इसे देखते हैं। बात उस फिल्म जैसी है - दस कहानियां। एक कहानी यहां चल रही है, तो दूसरी कहानी वहां चल रही है, और अंत में आप विभिन्न कहानियों के बीच कड़ियां देखने लगते हैं ताकि एक समग्र समष्टि बना सकें।

वन और निर्वनीकरण

चूंकि मेरी पृष्ठभूमि जंगलों से जुड़ी है, इसलिए मैं सामान्य पर्यावरण की बात करने से पहले इकॉलॉजी को जंगल के लिहाज़ से देखूंगा। दुनिया के जंगलों की क्या हालत है, इसका मात्र एक उदाहरण देकर कई सवाल पूछे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, हम कह सकते हैं कि हमने काफी सारे जंगल गंवा दिए हैं, मगर हम यह सचमुच

कभी नहीं जान पाएंगे कि इन जंगलों को मात्रात्मक हानि कितनी हुई है क्योंकि हमारे पास बहुत समय पहले के वनों के नक्शे नहीं हैं। सिर्फ एक है जो 1895 में बनाया गया था। यह देश के पहले वन महानिरीक्षक ब्रांडिस की पुस्तक का मुखपृष्ठ था। इस नक्शे में दरअसल जंगलों का विस्तार नहीं बताया गया है, बल्कि यह वनों के प्रमुख प्रकारों के वितरण को दर्शाता है। वानिकी की दृष्टि से ऐसे मानचित्रण को महत्त्वपूर्ण माना जाता था क्योंकि यह वनों से संसाधनों के दोहन के लिए ज़रूरी था - सागौन कहां मिलेगा, देवदार कहां होगा या लाल चंदन कहां मिलेगा या इनका सर्वोत्तम दोहन कैसे हो सकता है। तो वितरण मानचित्र इस संदर्भ में बनाए गए थे, न कि वनों के फैलाव का नक्शा बनाने की दृष्टि से। आजकल वन मानचित्र इस दूसरे सरोकार के संदर्भ में बनाए जाते हैं।



अमेज़न के 1975 के फोटोग्राफ्स और रोडोनिया के 2001 के फोटोग्राफ्स में हम फिश-बोन सिस्टम देख सकते हैं जहां लोग प्रवेश करके किसी इलाके का निर्वनीकरण शुरू कर देते हैं, सिर्फ पेड़ों के लिए नहीं बल्कि पुनर्बसाहट के लिए भी। इस मामले में यह मानना ज़रूरी है कि निर्वनीकरण को लेकर लोगों का एक नज़रिया है। उत्तराखंड के एक हालिया नक्शे में हम देख सकते हैं कि ज़मीन के एक छोटे से टुकड़े का जंगल साफ किया गया है। हम यह भी देख सकते हैं कि विकास व पर्यावरण साथ-साथ चलते हैं, इस अर्थ में कि कई मर्तबा विकास ही पर्यावरण की समस्याएं पैदा करता है।

कृषि और पर्यावरण

कृषि सम्बंधी उदाहरण देखते हैं। मानव आबादी काफी बढ़ गई है और साथ ही मांग भी बढ़ी है। इसके कुछ अच्छे उदाहरण दिल्ली के आसपास सरसों के खेतों, महाराष्ट्र में गन्ने के खेतों के विकास और उत्तराखंड में टेरेस खेती के विकास के रूप में देखे जा सकते हैं। ये सब अलग-अलग स्थानों पर खेती के अलग-अलग प्रकार हैं जहां ज़रूरतें अलग-अलग होती हैं और इन सबके इकॉलॉजिकल असर अलग-अलग होते हैं। साहित्य से पता चलता है कि जिन इलाकों में सरसों उगाई जा रही है, वहां एक समय पर जंगल थे। गन्ना एक महत्त्वपूर्ण नगदी फसल है जो आर्थिक विकास में योगदान देती है। मगर नगदी फसल उगाने की कीमत क्या चुकानी पड़ती है? ज़ाहिर है इसमें नफा-नुकसान शामिल है। टेरेस खेती शुरू हुई थी क्योंकि पहाड़ों में लोगों के पास समतल ज़मीन नहीं थी और उन्हें अपने भोजन के लिए खेती करना ज़रूरी था। मगर इसके भी इकॉलॉजिकल असर होते हैं, जैसे मिट्‌टी बह जाने के रूप में। यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम इन टेरेस का प्रबंधन कैसे करते हैं। 1967 वह साल था जब हरित क्रांति शुरू हुई थी मगर आज हम सदाहरित क्रांति की बातें कर रहे हैं क्योंकि हमने हरित क्रांति की दिक्कतें समझ ली हैं। हालांकि हरित क्रांति इस मायने में एक अच्छी चीज़ थी कि इसने हमें ज़रूरत के समय खाद्यान्न उपलब्ध कराया मगर पर्यावरण की दृष्टि से यह उतनी अच्छी चीज़ नहीं थी।

विकास और पर्यावरण

विकास का भी पर्यावरण पर उल्लेखनीय असर हो रहा है। हमारे लिए इंफ्रास्ट्रक्चर विकास ज़रूरी है और इसमें बांध भी शामिल हैं। मसलन, देश के सबसे पुराने बांधों में से एक पुणे का मुल्शी बांध है, जो ब्रिटिश ज़माने में बनाया गया था। उस समय ऊर्जा कोई अहम मुद्दा नहीं था। एक और उदाहरण 1960 के दशक में सतलज नदी पर बनाया गया भाखड़ा नंगल बांध है, जिसके चलते बिलासपुर शहर डूब गया था। यह बांध एक पहाड़ी की ढलान पर बनाया गया था मगर समय के साथ यहां गाद भर गई। विचार यह था कि यह बांध 100 साल चलेगा और

कम से कम इतने समय तक ऊर्जा देता रहेगा मगर वह अब हो नहीं रहा है। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां गाद जमा होने के कारण मंदिर मिट्टी में दब गए हैं। यह हमें एक ऐसे इकॉलॉजिकल मुद्दे पर ला खड़ा करता है जिसके बारे में सोचना होगा - गाद भराव क्यों होता है? इसकी रोकथाम कैसे हो सकती है?

विभिन्न इलाकों में अलग-अलग कारणों से खनन भी हो रहा है, जिसमें कोयला खनन एक बड़ा क्षेत्र है। उड़ीसा एक बड़ा खनन क्षेत्र है जहां पायरोफिलाइट खदानों के अलावा लौह अयस्क की खदानें भी हैं। देश के आर्थिक विकास की बातें करें, तो हमें बहुत सारा स्टील चाहिए, और हम काफी सारा स्टील चीन को निर्यात भी करते रहे हैं। मगर पर्यावरण की दृष्टि से देखें तो कई बातों पर विचार करना आवश्यक है। मामला सिर्फ वन भूमि की बरबादी का नहीं है, बल्कि पहाड़ी भू-बनावट में परिवर्तन का भी है जो वहां रहने वाले लोगों के लिए जीविका का आधार है।

आइए फ्लोरिडा के एवरग्लेड्स की बात करें जहां एक महत्त्वपूर्ण इकोसिस्टम मौजूद है। इस इकोसिस्टम पर न सिर्फ नज़दीकी शहरों मायामी और पोर्ट लॉडरडेल की वजह से खतरा पैदा हो गया है, क्योंकि ये शहर समय के साथ काफी बढ़ गए हैं, बल्कि इसलिए भी कि यह इलाका जगह-जगह सूख रहा है। उन्होंने एवरग्लेड्स से होकर एक सड़क बनाई है जिसकी वजह से अब उत्तर का पानी आसानी से दक्षिण में नहीं पहुंचता।

वैश्विक पर्यावरण पर असर

पर्यावरण पर इन्सानों का असर बहुत भारी रहा है। एक तो हम अपने गैर-नवीकरणीय संसाधनों को बहुत तेज़ी से इस्तेमाल कर रहे हैं, और दूसरे, इन संसाधनों के उपयोग के कारण तमाम किस्म का प्रदूषण पैदा हो रहा है जो हमारे ऊपर असर डाल रहा है। इन रुझानों के असर जैव-निर्धनीकरण या संसाधनों के अभाव, विषाक्तता, जलवायु परिवर्तन, और इकोसिस्टम में रासायनिक असंतुलन के रूप में सामने हैं। इससे हम समुद्री ह्रास, रेगिस्तानीकरण, निर्वनीकरण, मीठे पानी के तंत्र में गिरावट वगैरह जैसे मुद्दों पर आ जाते हैं। मगर ऐसे नवीकरणीय स्रोत ढूंढना आसान नहीं है जो हमेशा चलते रहें - बात सिर्फ नवीकरणीय अथवा गैर-नवीकरणीय की नहीं है बल्कि यह है कि दुर्लभ और गैर-दुर्लभ क्या है? उदाहरण के लिए, पानी को हम ऊर्जा का एक नवीकरणीय स्रोत मानते आए थे मगर ऐसा शायद नहीं है। आज बैंगलोर, दिल्ली और कई अन्य इलाकों में पानी का संकट है। भूजल स्तर नीचे जा रहा है क्योंकि या तो लोग बहुत ज़्यादा पानी पीने लगे हैं या इसका उपयोग खेती में हो रहा है, मगर ज़्यादा महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इसका बहुत अधिक इस्तेमाल उद्योग में हो रहा है। उद्योग व खेती दोनों में विषैले पदार्थ और अन्य रसायन (जैसे उर्वरकों से) जल संसाधनों में रिसते हैं और जल प्रदूषण पैदा करते हैं। अमोनिया आधारित उर्वरकों में नाइट्रोजन का उपयोग होता है, वह उद्योगों से निकलने वाला एक प्रमुख प्रदूषक है।

जब हमने मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल के संदर्भ में पर्यावरण की बात करना शुरू ही किया था तब ओज़ोन का ह्रास पहली चीज़ थी। कोशिश यह की गई थी कि ऐसे उत्पादों का इस्तेमाल कम किया जाए जो सीएफसी या फ्रियॉन्स या हैलॉन्स पैदा करते हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि ओज़ोन परत को और नुकसान न पहुंचे। जलवायु परिवर्तन एक ऐसी महत्त्वपूर्ण चीज़ है जो हर चीज़ को अपने दायरे में समेट लेती है। मैं आगे इसकी और बात करूंगा, मगर यहां रुकता हूं ताकि कुछ सवाल आ सकें।

अंजलि नरोन्हा, एकलव्य

पर्यावरण सम्बंधी उन अवधारणाओं को कैसे अलग करें जो शिक्षा के परिप्रेक्ष्य से आती हैं क्योंकि पर्यावरण शिक्षा के अंदर भी इसे लेकर काफी बहस रही है। इस बात को लेकर कुछ समझ है कि 'पर्यावरण' से हमारा आशय क्या है और इसे लेकर अलग-अलग परिप्रेक्ष्य हैं। जब हम इकॉलॉजी जैसे शब्द या अवधारणा की ओर बढ़ते हैं, तो क्या संक्षेप में बता सकते हैं कि हम इकॉलॉजी शब्द का उपयोग कब करते हैं, यह पर्यावरण से किन मायनों में अलग है, और किन संदर्भों में हम इन दोनों का उपयोग करते हैं?

सौमित्री

यहां बहुत ज़्यादा तकनीकी बारीकियों में न घुसें। मैं कहूंगा कि मूलतः शब्द तो पर्यावरण है। हवा, पानी, भूमि, वन्य जीव, और पेड़-पौधे, सब पर्यावरण के हिस्से हैं। जो भी चीज़ पर्यावरण पर असर डालती है, वह हम पर भी असर डालती है। यह प्रमुख बात है। जब हम इकॉलॉजी की बात करते हैं, तो वह व्यापक शब्द पर्यावरण का एक छोटा उप-खंड है। इकॉलॉजी के तहत हम देखते हैं कि प्रजातियां एक-दूसरे से कैसे अंतर्क्रिया करती हैं, इन्सान पेड़-पौधों से कैसे अंतर्क्रिया करते हैं। इस मायने में यह एक छोटी अवधारणा है। यानी इकॉलॉजी पर्यावरण के अपेक्षाकृत विशाल दायरे का एक हिस्सा है।

सुब्रमण्यन

पर्यावरण के अंतर्गत आप वस्तुओं का वर्णन कर रहे हैं। इकॉलॉजी का वर्णन प्रक्रिया के रूप में किया जाता है। मेरे कहने का मतलब है कि एक दूसरे का उपसमूह नहीं है।

सौमित्री

वाकई नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इकॉलॉजी पर्यावरण का एक पहलू है। मैं सिर्फ यह कह रहा हूं कि जब हम पर्यावरण की बात करते हैं तो हम अपने आसपास की भौतिक वस्तुओं की बात करते हैं। दूसरी ओर, इकॉलॉजी, वनस्पति प्रजाति की और उनकी आपसी अंतर्क्रिया की बात है।

हृदयकांत दीवान (हार्डी), विद्या भवन सोसायटी

आपने जनसंख्या के बारे में जो ग्राफ दिखाया था, उसके बारे में मेरे दो सवाल हैं। यह सही है कि मानव जनसंख्या बहुत कम समय में बढ़ गई है। अब एक सवाल है कि इस ग्रह के विकास के लंबे दौर में प्रजातियां खत्म हुई हैं। और प्रजातियां बची भी हैं। वास्तव में कोई भी प्रजाति अपनी संतानों की संख्या को अधिकतम रखने का प्रयास करती हैं। यह जैव विकास का मूल है। इसके मद्दे नज़र मेरी एक चिंता तो यह तथ्य है कि जनसंख्या बढ़ी है। दूसरा सवाल संकेतकों का है, जैसे, ज़्यादा जनसंख्या मतलब ज़्यादा ट्राफिक। तो दलील यह दी जाती है कि ज़्यादा आबादी होगी तो, उदाहरण के लिए, ज़्यादा कारें होंगी। इस तरह के तर्क की एक दिक्कत है। मेरे दिमाग में मात्र इसलिए यह विचार आया क्योंकि हम ज़्यादा पेचीदा मुद्दों की बात कर रहे हैं। तो हमें यह स्पष्ट होना चाहिए कि हम इन दोनों मोर्चों पर क्या बात कर रहे हैं। मसलन यह देखें कि प्रकृति में यदि इन्सानों का प्रादुर्भाव न होता तो यह चर्चा किस तरह की होती? हमें इसके बारे में इसलिए सोचना होगा कि अन्यथा लोग सिर्फ आपको डराने के लिए बातें बताते हैं। प्रकृति में इन चीज़ों से निपटने की ताकत है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं।

सौमित्री

एकदम सही कहा आपने। हम सदैव यह मानकर चलते हैं कि प्रकृति में हर परिस्थिति से निपटने की और चीज़ों को इस तरह करने की क्षमता होती है कि जो कुछ होगा वह बेहतरी के लिए होगा। मगर हमने जो कुछ किया है वह वास्तव में प्रकृति के इस काम को मुश्किल बना देता है। वास्तव में हम इस तंत्र को उसकी अंतिम सीमा तक खींच रहे हैं, और सोच रहे हैं कि यह जीवित रह पाएगा या नहीं। और यह संभावना है कि शायद हम न जी पाएं। मगर इसका लोगों को डराने से कोई लेना-देना नहीं है। हम सब यहां एक ही सरोकार से आए हैं कि कोई रास्ता निकालें, सिर्फ इसलिए नहीं कि हम वापिस प्रकृति की ओर लौट जाएं बल्कि इसलिए कि हम आराम से जीना चाहते हैं और यह सुनिश्चित करना चाहते हैं कि यह आराम भविष्य में भी मिलता रहे। टिकाऊपन के इस चरण को परिभाषित करना ज़रूरी है।

वेणु एन, सीएफएल-बैंगलोर

क्या यह कहना सही होगा कि आप यह कह रहे हैं कि प्राकृतिक पर्यावरण पर इन्सानों का असर इतना अधिक

रहा है कि उसके बारे में चेत जाना चाहिए? यह बात तो बाद में आएगी कि हम इकॉलॉजिकल नज़रिया अपनाते हैं या विकास या टिकाऊपन का नज़रिया अपनाते हैं।

सौमित्री

जी हां, तथ्य यह है कि इन्सान ही इसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

मीरा

मैं पर्यावरण औऱ इकॉलॉजी के सवाल पर लौटना चाहूंगी क्योंकि मुझे लगता है कि तकनीकी रूप से मैं इस पर कुछ रोशनी डाल सकती हूं। मूलतः ये ऐतिहासिक रूप से विकसित विषय हैं। एक समय जब इन्सान प्रकृति का अध्ययन कर रहे थे, तब यह कहा जाता था कि प्रकृति में एक विशाल ऊष्मा-गतिकी तंत्र (thermodynamic system) है। जैसे कार्बन चक्र, और पर्यावरण वह चीज़ है जो हमें घेरे हुए है। मगर तकनीकी रूप से जब आप पर्यावरण विज्ञान की बात करते हैं, तो आप किसी तंत्र के भौतिक गुणधर्मों के अध्ययन की बात करते हैं। जल चक्र एक सामान्य उदाहरण है, जैसा कि स्कूली पाठ्य पुस्तकों में छोटे-से चित्र में दर्शाया जाता है। मगर जब आप इकॉलॉजी की बात करते हैं, तो इकॉलॉजी ज़्यादातर जीव विज्ञान से आती है। जीव विज्ञान के विकास के साथ हम यह देखने लगे कि किस तरह के पर्यावरण में जीवन संभव है। जीवन को अपने निर्वाह के लिए क्या चाहिए? तो जब आप चींटी और जीव विज्ञान की बात करते हैं, और यह देखते हैं कि उसे अपना भोजन कहां से मिलता है, तो आप प्राकृतवास की बात कर रहे हैं और तब आप उस दायरे की ओर बढ़ते हैं, मैं एकदम शैक्षिक नज़रिए से बात कर रही हूं, जिसे इकॉलॉजी कहते हैं। काफी समय तक लोग कहते थे कि वाटरशेड या नदी तंत्र जैसी चीज़ें होती हैं और इन तंत्रों और प्रकृति की ऊष्मागतिकी की बात करते हुए आप पर्यावरण विज्ञान की बात कर रहे हैं। पर्यावरण विज्ञान में आप रसायन शास्त्र का अध्ययन करेंगे और पानी के सारे जैव-गुणधर्मों का मापन करेंगे। मगर जब आप इकॉलॉजी का अध्ययन करेंगे तो आप इस बात का अध्ययन करेंगे कि कोई परिंदा सांप को कैसे खाता है या जैविक तंत्र का जैव-पदार्थ कैसे गति करता है।

हाल में लोगों ने इन दोनों को छोड़ दिया है और ये दोनों एक हो गए हैं। लोगों ने समझ लिया है कि पर्यावरण और इकॉलॉजी के विभाजन में ये दो अलग-अलग तंत्र हैं और ये हर समय आपस में अंतर्क्रिया करते हैं। अतः अब हम इन शब्दों को ज़्यादा सामान्य ढंग से इस्तेमाल करते हैं। मगर संकट पर्यावरण के लिए नहीं है। संकट तो इकॉलॉजी-आधारित लोगों के लिए है क्योंकि जीवन खतरे में है। हम सब मर जाएं और सारे जीव-जंतु मर जाएं, तो भी पर्यावरण तंत्र तो किसी और ढंग से काम करता रहेगा। मगर यह जीवन के लिए खतरा बन गया है।

सौमित्री

जी हां, जब हम लोगों के नज़रिए से बात करते हैं, तो यह सब मूलतः हमारे ही कारण हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन का असर

जलवायु परिवर्तन पर लौटते हुए, हमें आईपीसीसी से काफी जानकारी मिल सकती है जो दुनिया भर में चल रहे शोध के बीच तालमेल बनाने में मदद करती है। मैं यहां आईपीसीसी की चतुर्थ आकलन रिपोर्ट से कुछ जानकारी प्रस्तुत करूंगा। इसमें दुनिया भर के करीब 2500 वैज्ञानिक विशेषज्ञों ने जलवायु परिवर्तन के विज्ञान व असर पर गौर किया है। दरअसल, मुझे इस प्रस्तुतीकरण का विचार डॉ. पचौरी के प्रस्तुतीकरण से ही मिला है; डॉ. पचौरी आईपीसीसी के अध्यक्ष हैं और टेरी के महानिदेशक भी हैं। जलवायु परिवर्तन की बात करते हुए हमें जल चक्र व नाइट्रोजन चक्र, व वायुमंडल में परिवर्तनों या बर्फ के पीछे सरकने जैसे मुद्दों पर विचार करना होगा। मगर एक व्यापक संदर्भ में हम ग्रीनहाउस गैस प्रभाव की बात करते हैं। हमें ऊर्जा धरती से या सूर्य से मिलती है। हो यह रहा है कि वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों, जिनमें से एक कार्बन डाईऑक्साइड है, की सांद्रता बढ़ गई है जिसकी



वजह से धरती का तापमान, निचले वायुमंडल का तापमान बढ़ गया है। सबसे पहली बात तो हमें यह करनी होगी कि 1968 के बाद से मानवीय क्रियाकलापों की वजह से विश्व के स्तर पर वायुमंडल में तीन प्रमुख ग्रीनहाउस गैसों - कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड - की सांद्रता बढ़ी है। मगर 1750 वह पड़ाव है जिसकी बात हम करते हैं, जिसके बाद मशीनों में कोयले का उपयोग शुरू होने के बाद औद्योगिक क्रांति हुई। कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता में वैश्विक वृद्धि मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधनों के उपयोग और भूमि उपयोग में परिवर्तन के कारण हुई है। जीवाश्म ईंधन यानी कोयला, प्राकृतिक गैस और तेल। जंगल कृषि भूमि में तबदील हो गए, और काफी जंगल रिहायशी उपयोग में, शहरों के विकास, इंफ्रास्ट्रक्चर विकास और अन्य कार्यों में खप गए। मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी गैसें मुख्यतः कृषि में पैदा होती हैं। जैसे मीथेन धान के खेतों में उत्पन्न होती है; नाइट्रस ऑक्साइड का उपयोग उर्वरकों के उत्पादन में होता है।

ग्रीनहाउस गैसों में परिवर्तन

यह ग्राफ दर्शाता है कि हालात कितने खराब हैं। चीज़ें अतीत में भी खराब रही हैं मगर हम जो कुछ कर रहे हैं, उसके चलते चक्र में अलग पैमाने पर बदलाव आ रहे हैं। ग्राफ में कार्बन डाईऑक्साइड की सांद्रता पार्ट्स पर मिलियन यानी पीपीएम के रूप में बताई गई है। आप देख सकते हैं कि कार्बन डाईऑक्साइड का स्तर 280 पीपीएम से बढ़कर 2005 में 330 पीपीएम हो गया। मगर यदि हम यह देखें कि पिछले 150 वर्षों में क्या हुआ है तो एक विशाल अंतर नज़र आता है।

अल गोर की *दी इंनकन्विनिएंट ट्रुथ* काफी संजीदगी से बताती है कि यदि हम वर्तमान राह पर चलते रहे तो भविष्य में क्या हो सकता है। जलवायु तंत्र के गर्माने को लेकर कोई मतभेद नहीं है। अब यह बात वायु व समुद्र के बढ़ते औसत वैश्विक तापमान, बर्फ के पिघलने, और औसत समुद्र तल के बढ़ने के अवलोकनों से ज़ाहिर है। ये कुछ चीज़ें हैं जिन्हें हमने देखा है और जानते हैं कि शायद ये मानवजनित कारणों से हो रही हैं। तापमान बढ़ रहा है, समुद्र तल बढ़ रहा है और उत्तरी गोलार्ध में हिम-आवरण कम होता जा रहा है।

रिपोर्ट में कहा गया है, "...पिछले 12 वर्षों (1995-2006) में 11 वर्ष उस अवधि (1850 से) के सबसे गर्म 12 वर्षों में शामिल हैं जब से वैश्विक सतह तापमान के रिकॉर्ड उपलब्ध हैं। 1850-1899 और 2001-2005 के दरम्यान तापमान में कुल वृद्धि 0.76^0 सेल्सियस हुई है।" मात्रात्मक दृष्टि से देखें तो यह कोई बहुत बड़ी वृद्धि नहीं लगती मगर जलवाष्प की सांद्रता को देखें तो इसका असर बहुत बड़ा है। यह जलवाष्प हवा में बढ़ी हुई नमी के रूप में सामने आ रही है, जो अपने तईं तूफानों को जन्म दे रही है, मानसून के पैटर्न में बदलाव कर रही है।

कई सारे लोग यह समझने की कोशिश कर रहे हैं कि ये तंत्र कैसे काम करते हैं और इस समझ के लिए वे अलग-अलग मॉडल्स का उपयोग कर रहे हैं जिनकी मदद से वे यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि भविष्य में क्या होगा। रिपोर्ट के मुताबिक "...1961 से 2003 के बीच वैश्विक समुद्र तल प्रति वर्ष करीब 1.8 मिलीमीटर बढ़ा है। वृद्धि की दर 1993 से 2003 के बीच ज़्यादा तेज़ रही हैः करीब 3.1 मिलीमीटर प्रति वर्ष। बीसवीं सदी में कुल वृद्धि 0.17 मिलीमीटर रही।" इस स्थिति ने मालदीव द्वीप को बदहवासी में धकेल दिया है जहां राष्ट्रपति को चिंता है कि उनका देश जलमग्न हो जाएगा। चेन्नै और मुंबई जैसे शहरों पर भी ऐसे ही असर हो सकते हैं।

हम पीछे हटते ग्लेशियर्स का उदाहरण भी ले सकते हैं। जैसे, जम्मू-काश्मीर क्षेत्र के कोलाहोई ग्लेशियर के वर्तमान फोटोग्राफ की तुलना 1954 में लिए गए एक फोटोग्राफ से करें तो पता चलता है कि ग्लेशियर के मुख पर बर्फ पिघल रहा है। 1965 से 2007 के बीच ग्लेशियर का मुख 485 मीटर पीछे खिसक गया है यानी 10 मीटर प्रति वर्ष से भी ज़्यादा। पश्चिमी सिक्किम के पूर्वी राथोंग ग्लेशियर की भी यही हालत है। 2009 में यह पता चला कि यह ग्लेशियर मात्र झील और मृत बर्फ रह गया है और अब इसे ग्लेशियर नहीं माना जा सकता। जिस बात पर ध्यान देने की ज़रूरत है वह सिर्फ इतनी नहीं है कि ग्लेशियर पिघल रहे हैं, बल्कि यह भी है कि इन ग्लेशियर्स से पोषित नदियां भी पीछे खिसक रही हैं। आर्क्टिक का तापमान बढ़ रहा है और ध्रुवीय भालू का प्राकृतवास शायद न बचे। आर्क्टिक पर बर्फ का वार्षिक विस्तार 2.7 प्रतिशत प्रति दशक की दर से सिकुड़ा है। इस रफ्तार से तो सन 2100 तक शायद आर्क्टिक पर बर्फ या हिम न बचे। ज़्यादा लंबी अवधि की ग्रीष्म लहरों की भविष्यवाणी की गई है। भारत में इसका उदाहरण आंध्र प्रदेश में 2003 में सामने आया। यह कहा जा रहा है कि अगले कुछ दशकों में प्रशांत सागर में शुरू होने वाले कटिबंधीय तूफानों की आवृत्ति और तीव्रता बढ़ेगी। इसके विपरीत, बंगाल की खाड़ी और अरब सागर में उठने वाले तूफानों की संख्या कम हुई है मगर उनकी तीव्रता बढ़ी है। फिलहाल हम ऐसी स्थितियों से निपटने को तैयार नहीं हैं। तटवर्ती इलाकों में समुद्र तल 1 मीटर तक बढ़ सकता है। एक इन्तहाई स्थिति में यदि गंगा-ब्रह्मपुत्र क्षेत्र में समुद्र में वृद्धि हुई, तो करीब 10 लाख लोग प्रभावित होंगे। यही स्थिति बांग्लादेश में या नील या मेकॉन्ग के आसपास भी हो सकती है।

अभी तो हम यह अनुमान व्यक्त कर रहे हैं कि क्या हो सकता है, लोग इस अनुमानित जलवायु परिवर्तन को कैसे संभालेंगे, कितनी आबादी प्रभावित होगी या हमारा ऊर्जा उपयोग किस तरह का होगा। क्या कुछ घटेगा, यह इस बात पर निर्भर है कि किस तरह के परिवर्तन उभरते हैं मगर यह पक्की बात है कि समय के साथ तापमान बढ़ेगा। 1980 के दशक से तुलना करें, तो तापमान काफी अधिक बढ़ेगा - सर्वोच्च अनुमान 4 डिग्री सेल्सियस का है। ये जलवायु परिवर्तन के असर हैं जिनकी भविष्यवाणी लोग करते रहे हैं - यह पानी को प्रभावित करेगा, यह आम तौर पर इकोसिस्टम को प्रभावित करेगा, हनारी खाद्यान्न उत्पादन प्रणाली को प्रभावित करेगा, हमारे तटों को प्रभावित करेगा, और डेल्टा तो शायद जलमग्न हो जाएंगे। हो सकता है कि उच्च अक्षांशों पर नम कटिबंधीय क्षेत्रों में पानी की उपलब्धता बढ़ेगी जबकि मध्य अक्षांशों और अर्ध शुष्क अक्षांशों पर सूखों में बढ़ोतरी होगी, और भारत जैसे देश इसी क्षेत्र में हैं। स्वास्थ्य पर भी बहुत असर होगा, और हमें कुपोषण, दस्त, हृदय-श्वसन सम्बंधी रोगों और संक्रामक रोगों का सामना करना पड़ेगा। हो सकता है कि हमारे पास शौच व्यवस्था के लिए पानी न रहे, या हो सकता है हमारे पास खाने को भोजन न हो। ग्रीष्म लहरों के कारण मृत्यु दर बढ़ सकती है और कुछ रोगवाहकों के वितरण में भी अंतर आ सकता है।



अफ्रीका में भी ज़्यादा भीषण व लंबे सूखे पड़ने की आशंका है। एशिया के कुछ हिस्सों में सूखे की आवृत्ति व तीव्रता में वृद्धि का कारण मूलतः तापमान

में वृद्धि बताया गया है, खास तौर से गर्मी और सामान्यतः शुष्क महीनों में और एल निनो घटनाओं के दौरान तापमान में वृद्धि। इस संदर्भ में उड़ीसा की चर्चा की जा सकती है, जहां 2000-2002 के सूखों, फसलों की तबाही, आम भुखमरी के चलते 1.1 करोड़ लोग प्रभावित हुए थे। खास तौर से भारत में ग्रीष्म लहरों के कारण मृत्यु व शारीरिक हानि, बाढ़ों, तूफानों, आग और सूखों में वृद्धि हो सकती है। कुछ समय बाद शायद हमारे पास पर्याप्त पानी न रहे, और शायद ऐसी फसलें भी न हों जो गर्मी को सहन कर सकें। तापमान में प्रति डिग्री की वृद्धि के साथ गेहूं के उत्पादन में 5-10 प्रतिशत कमी आ सकती है।

यदि उपयुक्त उपाय न किए गए, तो जलवायु परिवर्तन गरीबी के हालात को बदतर बनाएगा और आर्थिक विकास धीमा पड़ता जाएगा। कृषि उत्पादकता में गिरावट की वजह से, खास तौर से भारत जैसे देशों में, आर्थिक विकास धीमा पड़ जाएगा। जलवायु परिवर्तन टिकाऊ विकास को परिभाषित करने वाले इकॉलॉजिकल, आर्थिक व सामाजिक लक्ष्यों को हासिल करने की हमारी क्षमता पर दबाव डालने वाले कारकों में से एक है। यदि हम आज इसके बारे में कुछ करते हैं, तो भी चीज़ों को स्थिर होने में सौ-डेढ़ सौ साल लगेंगे। यह तब जब हम वे सारे क्रियाकलाप आज ही बंद कर दें। आर्थिक विकास पर भी चोट होगी। औद्योगीकरण के तहत आर्थिक विकास के मामले में हम जिस ढंग से पश्चिम की नकल करने की कोशिश कर रहे हैं, उसमें हम कितने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर सकते हैं, इसकी एक सीमा है। प्रदूषण पूरे चक्र को प्रभावित कर सकता है और इस बात की एक सीमा है कि पर्यावरण में कितना प्रदूषण समा सकता है। यह समझना भी महत्त्वपूर्ण है कि हम पर्यावरण के अंदर, पूरे इकॉलॉजिकल तंत्र के अंदर ही काम करते हैं और वहीं से संसाधनों का निष्कर्षण होता है, और वहीं व्यर्थ पदार्थ भी जाते हैं।

मेरा ख्याल है, अब कुछ सवाल हो जाएं।

उषा रामन, टीचर प्लस

यह मूलतः ऐसा सवाल है जो शिक्षा में काम करने वाले पूछेंगे - हमारे ऊपर लगातार जानकारी की बमबारी होती है, जलवायु बदल रही है, इकॉलॉजिकल शरणार्थी हैं, वैश्विक तपन है वगैरह। जिन बड़ी-बड़ी समस्याओं का हम सामना कर रहे हैं, उन्हें कैसे सामूहिक या व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी में तबदील करें? मेरे ख्याल में शिक्षकों को लगातार इस सवाल का कामना करना पड़ता है।

हार्डी

ऐसे मामलों में जहां चिंता की कोई बात है, और जहां हम व्यक्ति के तौर पर कुछ कर सकते हैं, वहां हमें कुछ करना होगा। यह कोई ऐसी समस्या नहीं है जिसका समाधान पर्यावरणीय या इकॉलॉजिकल परिप्रेक्ष्य से निकलेगा, इसे तो सामाजिक-राजनैतिक परिप्रेक्ष्य से सुलझाना होगा। आपने इस सवाल पर कुछ नहीं कहा। इसलिए मैं यह सवाल पूछकर आपको थोड़ा परेशानी में डालूंगा - आपने जो आंकड़े दिए हैं, उनसे कैसे निपटा जाए? मैं इनके साथ क्या करूं?

शरद चंद्र बेहार, भोपाल

मुझे आशंका है कि व्यक्ति के स्तर पर कार्रवाई सांकेतिक व रस्म आदायगी ही होगी। वास्तव में ज़रूरत इस बात की है कि विकास के अर्थ को लेकर हमारे सोच में बुनियादी बदलाव आए। जब आप कहते हैं कि 'विकास भी प्रभावित होगा' तो 'विकास' से आपका मतलब क्या है? विकास के वैकल्पिक परिप्रेक्ष्य की समझ और उस विकास की रणनीतियां आप कैसे हासिल करेंगे? अन्यथा होगा यह कि हम बहुत खुश और संतुष्ट रहेंगे कि चलो 'मैं पोलीथीन का इस्तेमाल नहीं करता, मैं कम पानी का उपयोग कर रहा हूं, मैं जंगल नहीं काट रहा हूं, मैं एक पेड़ लगा रहा हूं' मगर मुझे नहीं लगता कि इससे कोई फर्क पड़ेगा या जिन समस्याओं का हम सामना कर रहे हैं,

उन पर तनिक-सी खरोंच भी आएगी। मगर यदि यह समझ गलत है तो मेरी समझ को सुधारें। साथ ही, मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि हमें अपनी व्यक्तिगत निष्ठा को बिलकुल भी व्यक्त नहीं करना चाहिए।

शेषागिरी, बैंगलोर

शिक्षा की बात को एक क्षण के लिए अलग रख दें, तो मुझे लगता है कि जब तक आप प्राकृतिक संसाधनों को व्यापारिक पूंजी मानते रहेंगे, तब तक दिक्कत है। और मेरे ख्याल में इस सवाल की जड़ें इस अधिक गहरे सवाल में है कि प्रगति का हमारे लिए क्या अर्थ है और हम किस तरह की गुणवत्ता का जीवन चाहते हैं। एक मायने में इस सवाल का जवाब सिर्फ स्कूलों और शिक्षा से ही मिल सकता है। मगर मुझे लगता है कि इसका जवाब कार्पोरेशन्स और सरकारों से और उनकी नीतियों से इस लिहाज़ से आना चाहिए कि वे कहां जाना चाहते हैं। और हां, व्यापक अर्थों में शिक्षा, जिस ढंग की जानकारी आपने हमसे साझा की, उसके ज़रिए असर डाल सकती है। मगर मुझे लगता है कि ज़्यादा बुनियादी सवाल यह है कि हम कहां जाना चाहते हैं। हम किस ढंग का समाज बनना चाहते हैं और मेरे ख्याल में हमें एक मायने में शिक्षा पर पुनर्विचार करना चाहिए। शायद शिक्षा के चरित्र को ही बदलने की ज़रूरत है।

रोहित धनकर, दिगंतर

मैं यह पूछते हुए थोड़ा हिचक रहा था। मुझे लगता है कि आपने हमें काफी सारी जानकारी दी है मगर मेरी स्वाभाविक प्रतिक्रिया यह है कि 'तो क्या?' आपने जो जानकारी दी है वह एक संकट की चेतावनी तभी लगती है जब मैं अपनी ओर से कुछ मान्यताएं इसमें जोड़ूं जिनकी बात यहां नहीं हुई है। मगर वास्तव में हो सकता है कि वे हमारी साझा मान्यताएं न हों। मैं अपनी ओर से जो जोड़ रहा हूं वह, आपने जो कुछ कहा, उसकी मेरी अपनी समझ है कि मानव जाति खतरे में है और इन्सानों को अमुक-अमुक करना चाहिए, हालांकि फिलहाल यह स्पष्ट नहीं है कि यह सब होगा किस तरीके से।

मुझे ऐसा लगता है कि यदि मैं वे मान्यताएं अपनी ओर से जोड़ दूं तो फिर शायद हमें दो पहलुओं को देखना होगा। जब हमने इसके बारे में पहले चर्चा की थी तो हम शिक्षा के साथ एक जुड़ाव पर पहुंचे थे। एक, टिकाऊ इकॉलॉजी और मानव जाति के लिए टिकाऊपन के तकनीकी पहलू को समझना। दूसरी चीज़ यह है कि यदि आप इसे समझ भी लेते हैं, तो भी इसकी कोई हद होगी। प्राकृतिक संसाधनों की एक सीमा है क्योंकि सारे सूक्ष्म तंत्रों की एक स्वाभाविक सीमा होती है। इसीलिए यह मानव जनसंख्या पर भी एक सीमा आरोपित कर देती है।

मगर जैसे ही आप यह कहते हैं कि मानव जनसंख्या की ऊपरी सीमा तय करना है, तब (सवाल यह उठता है कि) किन लोगों को जीना है, किन लोगों के लिए इन्तज़ाम किए जाएंगे और किन लोगों के लिए इन्तज़ाम नहीं किए जाएंगे? इस मोड़ पर हमें यह सवाल पूछना होगा कि मानव आबादी के किस तबके के लिए समता व न्याय की व्यवस्था करना चाहिए? यह पूरे परिदृश्य की सामाजिक-राजनैतिक समझ का तकाज़ा है। हमें यह सवाल भी पूछना होगाः 'हम कहां जाना चाहते हैं?' यानी मानव जीवन का मूल्य क्या है?

इसे छोड़ दें, तो भी कथित विकास के नाम पर हम जिस दिशा में बढ़ रहे हैं और जिस ढंग से हम जी रहे हैं, क्या वह इस अर्थ में जीने योग्य है? यदि हम यह भी मान लें कि धरती के संसाधन असीमित हैं, तो भी क्या हम अपनी बुद्धि और स्वयं अपने तर्क के साथ न्याय कर रहे हैं? शायद ये सवाल भी पूछने होंगे। तो हमें तीन पहलुओं पर विचार करना होगा - तकनीकी/इकॉलॉजिकल पहलू, सामाजिक-राजनैतिक पहलू, और जीने-योग्य-मानव-जीवन वाला पहलू। शुक्रिया।

सिद्धार्थ, फायरफ्लाइस, बैंगलोर

यदि हम मान लें कि जलवायु परिवर्तन सचमुच हो रहा है, तो दो परिदृश्य उभरते हैं। एक तो यह कि यदि यह

हो रहा है तो सामूहिक प्रयासों के ज़रिए हम न सिर्फ इसके प्रभाव को न्यूनतम कर सकते हैं बल्कि कुछ हद तक इसे पलट भी सकते हैं। दूसरी स्थिति ज़्यादा मायूस है कि यह (परिवर्तन) पलटने के काबिल नहीं रहा है या लगभग नाकाबिले पलट हो चुका है। इसे लेकर मेरे दिमाग में बात यह है कि चूंकि हम शिक्षा की बात कर रहे हैं, तो इन दोनों परिदृश्यों से निपटने के लिए किस तरह के मनोवैज्ञाननिक मूल्यों की ज़रूरत है? मेरे दो सहकर्मी हैं, जिन्होंने अपने किशोर बच्चों को कह दिया है कि विवाह के बाद वे बच्चे पैदा करने की बात सोचने से भी पहले सौ बार सोचें। मेरे ख्याल में यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। वे कौन-से रवैये, मूल्य या आध्यात्मिक ऊर्जाएं हैं, जिनकी बदौलत लोग भविष्य को लेकर मायूस और निरुत्साहित नहीं होंगे और मुश्किल के ऐसे क्षणों में भी खुशनुमा, सकारात्मक और हमदर्दी से भरपूर रहेंगे।

सौमित्री

इन सारे सवालों के लिए धन्यवाद। मुझे उम्मीद है कि मैं इन सबका जवाब एक छोटे से संवाद में समेट पाऊंगा। और कुछ नहीं, तो उम्मीद ही हमें बनाए रखती है। तो उम्मीद है कि चीज़ें होंगी। हम जो कुछ कर रहे हैं, उसका औचित्य हमेशा आंकड़ों से आए, यह ज़रूरी नहीं है। मैंने कोशिश की कि इन बातों को यथासंभव आंकड़ों से मुक्त रख सकूं, और साथ ही यह बता सकूं कि ये महत्त्वपूर्ण मुद्दे हैं। मैं समझता हूं कि यह बहुत तकनीकी प्रस्तुतीकरण नहीं था। हो सकता है कि हमारे लिए यह जानना ज़रूरी नहीं है कि तापमान में वृद्धि 0.76 डिग्री है या 0.79 डिग्री। ये बातें हम वैज्ञानिकों के लिए छोड़ सकते हैं। और इसी पड़ाव पर वास्तव में शिक्षा का प्रवेश होता है - जो कुछ वैज्ञानिक कह रहे हैं, उसे लोगों की वास्तविक समझ से कैसे जोड़ें? मैं न तो वैज्ञानिक हूं, न ही शिक्षा के क्षेत्र से हूं कि आपको यह बता सकूं कि आप कैसे इस काम को करें। मगर अहम बात यह है कि हम इस बात को समझें कि यह एक महत्त्वपूर्ण मसला है जिसे संबोधित करना ज़रूरी है।

मुद्दा यह है कि हमें इस बारे में कुछ करना होगा कि हम इस ग्रह पर रहना चाहते हैं, और आराम से रहना चाहते हैं। हम आम तौर पर सोचते हैं कि इसका जवाब विकास में है, मगर फिर आप विकास को किस ढंग से परिभाषित करेंगे? क्या विकास का मतलब यह है कि ज़्यादा एसी हों, या बरबाद करने के लिए ज़्यादा पानी हो? यह शायद सही जवाब नहीं है; हमें अपने सोच को दूसरी दिशा में मोड़ना होगा। और यहीं शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। कितनी मर्तबा हम टीवी पर वह विज्ञापन देखते हैं जिसमें बताया जाता है कि ब्रश करते समय नल को बंद कर दें, मगर क्या आपने इस बात पर ध्यान दिया है कि कितने लोग वास्तव में ऐसा करते हैं? यह शिक्षा का एक उदाहरण है जो स्कूल से नहीं मिलती। काफी सारी शिक्षा घर से मिलती है। इसका कारण अव्वल तो शायद यह है कि हमने नल के पानी का उपयोग करना शुरू किया। एक समय था जब नल नहीं थे और लोग बाल्टी का उपयोग करते थे। तब वे थोड़ा-सा पानी हाथ में लेकर उपयोग करते थे। अब टेक्नॉलॉजी ने हमें नल दे दिए हैं, मगर उसने हमें यह नहीं सिखाया कि इनका सर्वोत्तम उपयोग कैसे करें।

शिक्षा को राजनैतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि जो कुछ आप सीखते हैं, वह हमेशा के लिए आपके साथ रहता है। इससे यह निर्धारित होता है कि आप जीवन को किस तरह देखते हैं या विज्ञान या पर्यावरण के साथ अपनी अंतर्क्रिया को किस ढंग से देखते हैं। हर चीज़ शायद वहीं से आती है।

मैंने जलवायु परिवर्तन के बारे में विस्तार में बात की क्योंकि फिलहाल यह पर्यावरण के बारे में एक सर्व-समावेशी सरोकार है मगर यदि आप मेरे प्रस्तुतीकरण के शुरुआती भाग पर लौटें, जहां हमने पर्यावरण विनाश की बात की थी, तो वे चीज़ें हैं जो जलवायु परिवर्तन की अनुपस्थिति में भी महत्त्वपूर्ण बातें रहेंगी।

किसी ने यह सवाल पूछा था कि एक व्यक्ति इस मामले में क्या कर सकता है। सरकार या सिविल सोसायटी संस्थाओं या कार्पोरेशन को जो कुछ करना चाहिए, उसकी तुलना में एक व्यक्ति की गतिविधियां शायद बहुत छोटी हैं। मैं इससे इस मायने में असहमत हूं कि हम सबको कुछ-न-कुछ भूमिका निभाना है। मुझे पता नहीं कि हम यह

कैसे तय कर सकते हैं कि किसे सबसे बड़ी भूमिका निभाना है मगर मैं कहूंगा कि सबकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। हम लोग, जो सरकार के हिस्से हैं, उन्हें यह कहना होगा कि हम पर्यावरण के साथ कैसी अंतर्क्रिया करें, हमें परिस्थिति का विश्लेषण इस तरह करना होगा, और इस तरह से हम इसे आगे ले जाना चाहते हैं। यह चीज़ ज़रूरी है। हममें से कुछ लोग कार्पोरेट विश्व के हिस्से हैं। मसलन, विप्रो यहां शानदार काम कर रहा है, हम सबको साथ ला रहा है कि हम यह सोचें कि इस संवाद को सामूहिक रूप से और सार्थक ढंग से कैसे आगे ले जाना है। और इसमें व्यक्तिगत प्रयासों की भी भूमिका है क्योंकि आप सब अपने निर्णय से इसमें शरीक हुए हैं। आप यह सिर्फ इसलिए नहीं कर रहे हैं कि आप एक ऐसे संगठन के हिस्से हैं, जिसके साथ विप्रो सहयोग कर रहा है, बल्कि इसलिए कर रहे हैं कि आपकी रुचि है।

और अंततः पूरी बात व्यक्तिगत क्षमताओं की है, चाहे वे शिक्षा तंत्र के हिस्से हों या सरकार के या कार्पोरेट क्षेत्र के। फर्क तो वास्तव में आपसे पड़ता है।

श्रीधर राजगोपाल, एजुकेशनल इनिशिएटिव (टीकाकार)

अगला सवाल पूछा जाए या उसका जवाब दिया जाए, उससे पहले मैं एक स्पष्टीकरण देना चाहूंगा। इस मंच का उद्देश्य कुछ किस्म के आंकड़े साझा करना है। फिर भी हम संख्याओं में नहीं उलझना चाहते थे क्योंकि वे भ्रामक हो सकती हैं। मकसद यह था कि पर्यावरण को बचाने के जो प्रयास चल रहे हैं, उनके संदर्भ में आए प्रत्यक्ष परिवर्तनों की कुछ जानकारी साझा की जाए। विचार यह है कि हम ऐसे कुछ परिवर्तनों को देख पाएं।

दीपज्योति सोनू ब्रह्मा, प्रवाह

सवाल सिर्फ आपसे नहीं है, बल्कि यह एक शंका है। इकॉलॉजी या प्रकृति के प्रति नज़रियों को समझने का एक नज़रिया यह है कि उस खतरे को देखा जाए जो 22वीं सदी के आसपास उजागर होगा, कि तापमान इतनी डिग्री बढ़ जाएगा और ग्लेशियर पिघल जाएंगे, वगैरह; काफी चेतावनियां दी जा रही हैं। यह एक तरीका हो सकता है। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि मेरे और पानी के बीच के सम्बंधों को समझें, एक व्यक्ति और एक पेड़ के रिश्ते को समझें; उदाहरण के लिए, अरुणाचल प्रदेश के कुछ आदिवासी लोग किसी ज़मीन पर एक साल खेती करते हैं, फिर उसे 4-5 साल के लिए खाली छोड़ देते हैं। इसके पीछे विचार यह नहीं होता कि वे इस पर आने वाले वर्षों में खेती नहीं करेंगे। विचार सिर्फ इतना है कि हमें खेत को छोड़ देना चाहिए क्योंकि हम जंगल से जुड़े हैं। मैंने जलवायु परिवर्तन पर कई प्रस्तुतीकरण सुने हैं, और अधिकांश में व्यापक खतरों की बात की जाती है। और जैसे ही हम अपने सामने यह खतरा देखते हैं, हम खुद को यह कहते हुए काट लेते हैं कि हमारा इस मुद्दे से कोई लेना-देना नहीं है, कि हम तो व्यक्ति के रूप में अपना दायित्व पूरा कर रहे हैं, कि हम तो नल बंद कर देते हैं वगैरह। मगर आपके और बरबाद होते पानी के बीच एक रिश्ता है। बात सिर्फ बरबाद करने की नहीं है, जब पानी आपकी टंकी से निकलकर नाली में बहता है, तो क्या उन दो पानी के बीच कोई सम्बंध है जो आपने भरा था और जो बह जा रहा है? मैं सिर्फ समझने की कोशिश कर रहा हूं, नज़रिया क्या होना चाहिए?

सौमित्री

मेरे पास तत्काल आपके लिए कोई जवाब शायद नहीं है कि हमें इसे प्रकृति के नज़रिए से लेना चाहिए या नहीं। हम सिर्फ शहरों में नहीं बल्कि कस्बों और गांवों में भी रहते हैं मगर ऊर्जा का बड़ा हिस्सा शहरों में खर्च होता है या प्रदूषण का स्तर भी शहरों में सबसे ऊंचा है। मगर यह देखने का मात्र एक ढंग है। कहने का मतलब यह नहीं है कि दूर-दराज इलाकों में प्रदूषण नहीं मगर हम उसके बारे में सोचते नहीं क्योंकि हम शहरों के लोग उससे नहीं जुड़ पाते। इसलिए लोग आपको आंकड़े दिखाते हैं, ताकि आप ज़्यादा व्यापक स्तर पर सोचने की शुरुआत करें। प्रकृति से व्यक्ति के रिश्ते सम्बंधी दूसरे सवाल का सम्बंध शायद एक विचार प्रक्रिया से है जिससे हमें इस ग्रह पर

ज़्यादा समन्वय से जीने के बारे में कुछ करने को आगे आने की प्रेरणा मिलेगी।

अंजलि

जिस तरह की बात अन्य लोगों ने कही हैं, उसी को आगे बढ़ाते हुए मुझे लगता है कि शिक्षा के नज़रिए से, खास तौर से स्कूली शिक्षा के नज़रिए से समस्या का सम्बंध अत्यधिक वैश्विक स्तर की जानकारी देने से भी है। उदाहरण के लिए, आपने कहा कि हो सकता है कि कल के दिन शायद एक भी ध्रुवीय भालू न बचे - तो क्या? या यह कि ग्लेशियर पिघल रहे हैं। मध्य प्रदेश में हमारे ज़्यादातर बच्चों ने बर्फ या हिम ही नहीं देखा है। तो यह सवाल महत्त्वपूर्ण है कि हम सामूहिक संसाधनों को किस नज़र से देखते हैं और कैसे इसके हिस्से करते हैं। भोपाल में हमने मेरे जीवन के 50 सालों में पहली बार पानी के संकट का सामना किया, जब पानी सप्लाई एक दिन छोड़कर एक दिन हुई। जब मैं इसके प्रति शिक्षित व सम्पन्न लोगों की ज़िम्मेदारी (प्रतिक्रिया) देखती हूं, तो डरावनी है क्योंकि आम एहसास यह है कि 'हम मोटर लगाकर पाइपों में से पानी खींच लेंगे, क्या फर्क पड़ता है यदि अन्य लोगों को पानी नहीं मिलता।' यही मामले का मर्म है - क्या व्यक्तियों के रूप में हम सामूहिक मुद्दों को उठाना व संबोधित करना चाहते हैं। पानी संकट के इस दौर में निर्माण कार्य पर प्रतिबंध नहीं लगाया गया। बस्तियों में पांच-पांच दिन तक पानी नहीं था। जब तक हम समतामूलक विकास, इकॉलॉजिकल टिकाऊपन की बात नहीं करते, और साझा संसाधनों की ओर नहीं देखते, यह नहीं सोचते कि अन्य राष्ट्रों को किस नज़र से देखें, तब तक इस तरह की जानकारी साझा करना कई समस्याओं की जड़ में नहीं जाता।

सौमित्री

मैं कुछ जोड़ना चाहता हूं - आप स्वयं को शिक्षित कर रहे हैं। और आप शिक्षा में क्या लाते हैं, यह आपकी पृष्ठभूमि पर निर्भर है।

अंजलि

मेरे ख्याल में यह एक राजनैतिक मुद्दा है। यदि एक समाज के रूप में हम उन व्यापक मुद्दों को उठाने को तैयार नहीं हैं, जिनका सम्बंध संसाधनों के समतामूलक बंटवारे से है, और मीडिया, लोगों को सक्रिय करने की कोशिश नहीं करते तो यह इसलिए है कि यह असुविधाजनक है। समय किसके पास है? हमने नल बंद कर दिए, हमें पांच बाल्टी पानी लगता था, उसे घटाकर हमने दो बाल्टी कर दिया है, हम अपने बच्चों से भी ऐसा करने को कहेंगे, और इस तरह से 200 और बच्चे यही करेंगे, बहुत हो गया।

रोहित

मैं इतना ही कहूंगा कि व्यक्ति को इतनी जल्दी खारिज न करें। हम मंच पर आगे कभी इस पर बात करेंगे कि एक व्यक्ति क्या कर सकता है और कैसे।

सौमित्री

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हम सब किसी मुद्दे से तभी जुड़ते हैं जब वह हमें प्रभावित करता है। आपने सही कहा कि ग्लेशियर्स मध्य प्रदेश के लोगों को प्रभावित नहीं करते। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मध्य प्रदेश में नर्मदा बांध लोगों को प्रभावित कर रहे हैं। मगर क्या ऐसे कोई अध्ययन किए जा रहे हैं, जो प्रकाशित हों और लोग उन्हें साझा कर सकें? यह भी तो शिक्षा का हिस्सा है। सिर्फ आदान-प्रदान से ही आप यह सोचने लगते हैं कि क्या किया जाना चाहिए।

अंततः शिक्षा का सम्बंध सोचने से ही तो है। बात लोगों तक जानकारी पहुंचाने की नहीं है, बल्कि यह है कि लोग सोचना कैसे शुरू करें। आपको अपने अनुभवों से अपनी जानकारी इकट्ठी करनी होगी। लोगों के बीच इस बात

को लेकर कभी आम सहमति नहीं बनेगी कि क्या सही है और क्या नहीं मगर जब आम लोग सहमत होंगे, जिसमें अलग-अलग व्यक्ति और उनके मत भी शामिल हैं, तब शायद आप यह देख पाएंगे कि इसका कुछ महत्व है। यह प्रस्तुतीकरण दरअसल जलवायु परिवर्तन के बारे में नहीं था, बल्कि इस बारे में था कि हमें पर्यावरण व इकॉलॉजी के मुद्दों निपटना होगा।

श्रीधर

मैं सौमित्री को धन्यवाद देकर सत्र को समेटने की कोशिश करूंगा। यदि मैं इसका सार देखूं, तो मुझे लगता है कि अधिकांश बातचीत से लगता है कि इस मुद्दे पर पर्याप्त प्रमाण हैं कि इसे गंभीरता से लिया जाए। इससे शायद ही कोई असहमत होगा। दूसरा हिस्सा यह था कि क्या हमारे पास इस संकट का कोई स्पष्ट समाधान है। क्या हम यह कह सकते हैं कि लोगों को फलां-फलां चीज़ करना चाहिए, और यदि कार्पोरेशन अमुक-अमुक काम करें और यदि सरकार कुछ ज़िम्मेदारियां उठाए तो समस्या हल हो जाएगी, कि तब विकास का समाधान निकल आएगा? हमारे पास इसका कोई उत्तर नहीं है। हमारे पास तो बस कुछ विचार हैं, जिन पर सामूहिक रूप से खोजबीन व विचार-विमर्श की ज़रूरत है।

जो तीसरा आयाम उभरा था वह तकनीकी, सामाजिक-राजनैतिक व व्यक्ति से सम्बंधित था। ये वे आयाम हैं जिनकी परस्पर अंतर्क्रिया होगी और लोगों ने तंत्र-स्तरीय सोच और डिज़ाइन सोच की बात की। मुझे यकीन है कि इस पर और चर्चा होगी।

मैं सौमित्री का शुक्रिया अदा करता हूं कि उन्होंने इस मुद्दे पर चर्चा को शुरू करवाया। बहुत-बहुत धन्यवाद।

सारांश

वक्ता ने निर्वनीकरण, भूमि उपयोग में बदलाव और मानवीय क्रियकलापों की वजह से हो रहे जलवायु परिवर्तन जैसे महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय मुद्दों पर प्रमाण प्रस्तुत किए। ये वे मुद्दे हैं जो तत्काल चिंता का विषय हैं। उन्होंने भारत व विश्व के संदर्भ में आंकड़े प्रस्तुत करके बताया कि आने वाले वर्षों में कितने गंभीर हालात हो सकते हैं। तर्क मूलतः विकास पर पर्यावरण और उस पर विकास के प्रभाव की निर्विवाद कड़ी तथा बदले हुए पर्यावरण का विकास पर क्या असर हो सकता है, के इर्द-गिर्द बुना गया था। सहभागियों ने अपने सवालों और टिप्पणियों के माध्यम से इकॉलॉजी व पर्यावरण के बीच फर्क की समस्या उठाने तथा इस पर ज़्यादा सैद्धांतिक समझ हासिल करने, स्थानीय और वैश्विक सरोकारों से निपटने के तरीकों, खास तौर से शिक्षा के संदर्भ में, और जिस ढंग से इन समस्याओं से व्यक्तिगत व सामूहिक स्तर पर निपटा जा सकता है जैसे मुद्दे उठाए।